उत्तम पुरुष की निवृत्ति

हरीचरन प्रकाश

उत्तम पुरुष की निवृत्ति

यह निश्चित है कि आज मैं सेवानिवृत्त हो रहा हूँ। कोई मुझसे पूछे कैसा लग रहा है तो कहूँगा कि मैं सौ फीसदी उत्साहित नहीं हूँ। कोई और स्पष्ट बोलने को कहे तो कहूँगा कि कह नहीं सकता कि दुखी नहीं हूँ। बस इससे ज्यादा स्पष्टता मेरी शैली को विरूप कर देती है। जानने वाले जानते हैं कि इस वाक्क्रीड़ा में मौलिक कुछ भी नहीं है। अंग्रेजी से परिचय का हिंदी में उद्घोष है। पर मेरी तरह का शैलीवादी आदमी इससे निरुत्साहित नहीं होता है।

इस समय मैं किचन की ओर भी बहुत शैलीगत ढंग से देख रहा हूँ अन्यथा क्या मैं यह देख पाता कि फर्श पर धूप का एक चतुर्भुज टुकड़ा चमक रहा है, गैस पर चाय बन रही है और भाप की परछाईं उस टुकड़े पर लपकती काँपती पड़ रही है। मैं बेचैन होकर उठ खड़ा होता हूँ, लगता है बहुत जल्दी ही और बहुत आडंबरपूर्ण रीति में मुझे धार्मिक बन जाना पड़ेगा।

सही बात तो यह है कि मेरी राशि ही गलत है। मेरी राशि तुला है। राशिविज्ञानी सुश्री लिंडा का कहना है कि इनसे ज्यादा तनावग्रस्त कोई नहीं रहता क्योंकि जैसे तराजू के दोनों पलड़े बराबर होने के पहले देर तक ऊपर नीचे होते रहते हैं वैसे ही तुलाराशिधारी अपने प्रसिद्ध और न्यायपूर्ण सम संतुलन पर आने से पहले जबरदस्त और हँफा देने वाले मानसिक उतार-चढ़ाव से ग्रस्त रहते हैं।

आह, मेरी निष्पक्षता कितनी विख्यात है, इसे न आग जला सकी और न शस्त्र हत कर सके। मेरे बारे में सबको पता है कि ...जी फाइल करते समय न मित्र देखते हैं, न शत्रु। जो कागज और और कायदा बोलता है वही लिखते हैं। उन्हें कोई हिला नहीं सकता, डिगा नहीं सकता। इसका व्यावहारिक अर्थ यह था कि चाहे कोई मेरे मुँह पर थूके या चाहे मुझे पान खिलावे, सब बेकार। पक्ष का प्रतिपक्ष यदि प्रस्तुत न हो तो न्यायहित में मैं उसे स्वयं सृजित करता हूँ। भ्रष्टजन मेरा बड़ा सम्मान करते हैं कि मैं उनके कदाचारों और कानूनी/तकनीकी दलीलों को बराबर तौलता हूँ जिसके कारण वे अक्सर बच जाते हैं और शुद्धजन केवल इसी कारण मुझे पसंद करते हैं कि भ्रष्ट मुझे खरीद नहीं सकते। परंतु दुख है कि इस मुंसिफमिजाजी के कारण मेरे मित्रों और रिश्तेदारों ने मुझे परिचितों की श्रेणी में पतित कर दिया। क्या करें, मैं कोई ऐसा-वैसा सरकारी नौकर नहीं हूँ। कागज से मैंने बहुत कुछ सीखा, वास्तविक रूप से प्रेम या घृणा करने के अलावा, लगभग सब कुछ।

चहलकदमी करते-करते मैं रुक गया।

पत्नी ने पूछा "क्या सब्जी बनेगी?"

मेरा उत्तर पत्नी को खिन्न कर देता था, लेकिन यह एक खिन्नता - रोज की खुराक, हम दोनों की आदत बन चुकी थी। शुरू-शुरू में मैं इस सवाल का जवाब तुरंत दे देता था "आलू कटहल"

"कटहल कहाँ रखा है?"

"तरोई प्याज।"

"प्याज तो इतनी है ही नहीं।"

धीरे-धीरे मैं जो चाहो के रास्ते पर आ गया। हालाँकि मैं स्वीकार करता हूँ कि यह रास्ता भी नाखुशगवार नहीं था क्योंकि मेरी पत्नी खाना फितरतन अच्छा बनाती है। लेकिन आज वह बजिद थी।

"अरे कुछ तो बताओ।"

"जो चाहो।"

"नहीं बताओ।"

"कोई खास बात है क्या, आज?"

"तुम्हीं तो कह रहे थे कि आज मुक्त हो रहा हूँ।"

"तो इसमें खुशी की क्या बात है?" मेरा स्वर सामान्य था, अतिशय सामान्य।

"मैंने खुशी की बात कहाँ की, केवल तुम्हारी बात दोहराई है।"

"जो चाहो बनाओ।" मैंने धीमे और ठंडे स्वर में कहा।

यह धीमा और ठंडा स्वर भी मैंने पुस्तकों से लिया था पूरे मुहावरे के साथ। "तेज शोर-ओ-गुल के बीच एक अधिकारसंपन्न धारदार चाकू की तरह सबको काटता हुआ धीमा ठंडा स्वर।"

मेरा यह ख्याल है कि नौकरी के सोलहवें साल में या इसके अरीब-करीब उम्र के इकतालीसवें साल में जीवन और किताबें एक-दूसरे में कुछ गुँथने से लगे थे। जब चाहते एक-दूसरे से सींग लड़ाते और जब चाहते परस्पर पुचकारते। अब यह मुमकिन नहीं था कि किताबों की जादुई कालीन पर बैठकर मैं जहाँ-तहाँ घूमूँ और जैसा का तैसा लौट आऊँ। जिंदगी कभी पीछे से कालर पकड़ती और कभी सामने आकर आँखें दिखाती। इसका मुकाबला मैंने पत्थर की तरह अविचल, अविकारी और ठस होकर किया, परिणामतः मेरे जीवन से आनंद का लोप हो गया। साहित्य, आँखों और मन को थकाने लगा था लेकिन जिन कुछ लोगों के साथ में उठता-बैठता था वे नई-नई किताबों के बारे में ऐसे बात करते मानो वे किताबें न होकर गंजेपन की नवीनतम औषधि हों। मुझे उनके लिए पढ़ना पड़ता था। मेरी सभी तरह की भूख कम हो गई थी और मन में आता था कि योगाभ्यास करूँ, पर क्या करूँ हाथ-पैर ही नहीं हिलते थे। ईश्वर एक ख्याल की तरह मुझे छू रहा था और मैं दिनोंदिन थक रहा था।

तभी मेरी एक मुलाकात हुई। मनुष्य के जीवन में अंडरवियर की उपयोगिता सर्वस्वीकृत है परंतु मानवीय संबंधों के जमाबाकी में अंतर्वस्त्र की भूमिका मेरे लिए अचिंत्य थी। वह मेरा एक सहकर्मी था। एक मामले की पड़ताल में हम लोगों को साथ-साथ दौरे पर जाना पड़ा और एक ही कमरे में ठहरना पड़ा। यह नहाने के बाद का वाकया है जब मैं गुसलखाने से पटरे का अंडरवियर पहने बाहर निकला।

"वाह गुरू पोपटलाल" वह हँसने लगा। मैं भी हँस सकता हूँ तो उसी रौ में मैंने कहा "मनुष्य वस्त्र फैशन के अनुसार पहनता है परंतु अंतर्वस्त्र अंतरात्मा के अनुसार।"

"अबे आत्मधनी, मैं बहुत खुश हूँ कि कोई हमकपड़ा मिला। भय्या, मैं भी पटरे वाली सूती घरेलू जांघिया पहनता हूँ लेकिन चाहता हूँ कि अगला जान न पाए। मैं तुम्हारे नैतिक साहस की दाद देता हूँ।"

"मैं तुम्हारी सुरुचि की..." ऐसा कहकर मैंने उसकी ओर हाथ बढ़ाया।

हम दोनों एकाएक अपने-अपने स्तरों पर बड़े आत्मीय ढंग से बेझिझक हो गए अर्थात औरतों की बात करने लगे। वह अपने तमाम तरह के अनुभव सुनाता था और मैं बदले

में उसे स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में कुछ विचार देता था। मेरी बातें उसके लिए नई नहीं थीं। उसने पूछा कि क्या औरत के बारे में इतना दिमाग लगाने की गुंजाइश है। मेरा असंदिग्ध मत था 'हाँ'। सुनकर वह थोड़ी देर के लिए कुंठित हो जाता लेकिन फिर पटरी पर लौट आता। मैं उसके किस्से सुनाता जो एक के बाद एक मेरी पसलियाँ खोलकर और किनारे रखकर अंदर जगह बना रहे थे। सुनाते-सुनाते अचानक उसकी आवाज उस समय धीमी हो जाती जब गुह्यतम-गुह्यतम के विवरण देने लगता। उसकी सूची में दूधों नहाई और पूतों फली, हरित-फलित पुष्टांगिनी भाभियाँ, क्रीड़ोत्सुक कनकछुरी सी कुमारिकाएँ और कभी कभार से कुछ ज्यादा ही काम आने वाली पुकारपातरें थीं। वह मेरा समवयस्क था परंतु उसके किस्से संस्मरणात्मक न होकर ताजातरीन थे जिनसे मुझे ईर्ष्या होती थी और उस ईर्ष्या के कारण घोर नैतिक कष्ट भी। मैंने उसे नीति-न्याय के अगले परमप्रिय तराजू पर तौलने की ठान ली।

मैंने पूछा "भाभी जी को पता नहीं लगता होगा?"

"अरे नहीं, सब तरह फिट रखता हूँ।"

सुनते ही मुझे इतना सात्विक क्रोध पीना पड़ा कि मेरा चेहरा पीला पड़ गया। फिर मैंने निर्मलचित्त होकर और भली-भाँति विचार कर मन ही मन उसके लिए सजा तजवीज की। उसकी पत्नी को स्वैराचारिणी होना ही चाहिए अन्यथा समाज का हिसाब बराबर नहीं होगा। मुझे ठीक से याद नहीं परंतु मुमकिन है कि इसके लिए मैंने देवताओं से भी प्रार्थना की हो।

लेकिन इसके बावजूद मैं उससे कुछ चिपक सा गया था। लिहाजा दौरे से लौटने के पश्चात भी मैं उसके अभियानों की दास्तान सुनाता रहा। इन्हीं दिनों उसने एक बार पूछा "ब्लू फिल्म देखी है"

मेरी साँस रुक गई, क्योंकि और बहुत-सी चीजों की तरह मैंने इसके बारे में भी केवल पढ़ ही रखा था। मैंने एक भी ब्लू फिल्म तब तक नहीं देखी थी लेकिन उसकी एक्स-रेटिंग, एम्सटरडम और अन्य जुड़े हुए नामों के बारे में काफी कुछ बता सकता था। मैंने तौलकर जबान खोली "नाट ऐज सच।"

"क्या मतलब?"

मैं चुप रहा। उसने कहा "चलो एक दिन प्रोग्राम रखते हैं तुम भी क्या याद रखोगे।"

उसने एक दिन वाकई प्रोग्राम रख दिया। मैं बहुत उचित और परिचित तरीके से घबड़ाया हुआ था। मैं अपनी इस घबराहट को पूरी तरह से उस पर प्रकट कर रहा था ताकि वह मुझे अपनी तरह का पैदायशी लंपट न समझे। मुझे उम्मीद थी कि वह अपने व्यापारी दोस्त को मेरा संपूर्ण परिचय नहीं देगा परंतु मुझे खिजाते हुए उसने यह बदमाशी की। स्मरण रहे कि नौकरी-संबंधी मेरे आदर्शों में से एक आदर्श यह भी था कि व्यापारियों से मित्रता नहीं होनी चाहिए। अतः इस परिचय से मैं सकुचाया और एक बेजान हाथ उसकी ओर बढ़ाया। उसने बड़े धड़ाके से मेरे उच्चतर अधिकारी का नाम लिया और कहा कि उनसे उसकी अच्छी दोस्ती है। इसके बाद वह हमको एक कमरे में ले गया जहाँ पूरा सरंजाम था। इस पूरे वक्के में जहाँ तक मुझे याद आता है मैं एक ऐसी मुद्रा प्रस्तुत करना चाहता था जिससे यह जाहिर हो सके कि मैं जिज्ञासावश यहाँ आया हूँ न कि यौनेद्रेकवश। मेरे सहकर्मी ने मुझे अनायास उबारा। उसने कहा... "जी साधु आदमी हैं, इन्हें जिंदगी का कुछ अता-पता नहीं है मैंने ही जोर दिया तब आए हैं।"

"ठीक किया, ले आए। अनुभव हर चीज का होना चाहिए। पहले राजा लोग अपने लड़कों को तहजीब सीखने तवायफों के कोठे पर भेजते थे।" मेजबान बोला।

"चलो शुरू करो।" सहकर्मी ने अधीरता दिखाई। कुछ खटर-पटर करने के बाद कैसेट चालू हो गया और चालू होते ही हमारा मेजबान व्यस्त-भाव से कमरे से बाहर चला गया।

अगले डेढ़ घंटों का वर्णन अनावश्यक है। समाप्त होने के बाद मित्र ने मेरी ओर देखा। उसके चेहरे पर विजयी मुस्कान थी। मुझे यह तय करना था कि मुस्कान का कौन-सा मॉडल पेश करूँ, सलज्ज या निर्लज्ज। पर हुआ यह कि मैं जोर से हँसा। गोया यह कोई अच्छा मजाक था जिसकी भरपूर ताईद जरूरी है। इस हँसी ने उस क्षण मेरी श्रेष्ठता स्थापित कर दी। उसकी आँखों में कौतुहल जगा और मर गया। मैंने उसकी पीठ जोर

से थपथपाई और कहा "नीले फीते का अमृत पिलाने के लिए अगाध धन्यवाद।" वह बहुत खुश हुआ और तबसे कुछ दिनों के लिए उसने मेरे लिए एक खास किस्म की जिम्मेदारी ओढ़ ली।

इसी जिम्मेदारी के दिनों में एक दिन उसने मेरे यौनानुभवों के बारे में पूछा। मैंने अपने सर के बालों में हाथ फेरा जिससे बाल माकूल ढंग से बेतरतीब हो गए। सोचा, मेरा चेहरा अब कुछ परेशान सा दिखने लगा होगा। उसने दुबारा अपना सवाल बडे फूहड़ ढंग से चुभाया, "बताओ भाभी जी के अलावा... है या नहीं।" पत्नी का इस प्रकार से जिक्र मुझे बहुत बुरा लगा। तबियत हुई कि एक अति संक्षिप्त नुकीलेपन के साथ कहूँ कि यह उसकी चिंता का विषय नहीं है और यह भी कि ऐसे वाक्य जिसमें मेरी धर्मपत्नी और संभोग के देशज रूपों का साथ-साथ इस्तेमाल हो मुझे हरगिज मंजूर नहीं। लेकिन उलझते-उलझते मेरे मुँह से फूटा "छोड़ो यार हीऽऽ हीऽऽ।"

वह छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ तो मैंने पूछा उसे क्या लगता है। उसने मुझे चिढ़ाया "मुझे तो तुम कौमार्य-संपन्न लगते हो।"

मैं चिढ़कर चुप हो गया। उसे लगा कि कुछ ज्यादती हो गई तो वह खिन्न होकर दूसरी बातें करने लगा। पर मेरा मन इन दूसरी बातों में भी नहीं था। सही बात तो यह है कि वही बात मैं अपने ढंग से करना चाहता था।

"लाओ तुम्हारा हाथ देखूँ।" देखकर मैंने कहा "तुम्हारा शुक्र पर्वत बहुत उठा है।"

"सितारों का खेल है। अपनी बताओ न।"

"निवेदन है कि मेरा चरित्र बहुत उठा उठा हुआ है।"

"हाऽऽ। गुरुदेव तुम्हारा इलाज मेरे हाथ में है, जल्दी लाइन पर आ जाओगे।"

मैंने बहुत सी अविश्वसनीय ढंग से मना किया "क्षमा करो।"

उसने स्फूर्तिपूर्वक कहा "देखा जाएगा।"

उसने कुछ दिनों तक कोई बात ही नहीं छेड़ी जबकि मैं दिनोंदिन अंकुरित हो रहा था। मैंने कुछ टोह लेने वाले मजाक अपनी ओर से शुरू किए। वह कहता "जल्दी इंतजाम करूँगा।" बदले में कुछ न कहकर मैं एक नीम मर्दाना मुक्का उसकी बाँह पर थपकाता।

एक दिन न जाने क्या हुआ कि अपने निहायत पुराने सड़े जीवन से मैं शराब की तरह की तरह कुछ रोमांचक क्षण खींच लाया।

मैं उस समय इंटरमीडिएट में पढता था और गणित तथा विज्ञान ले रखा था। जिन मास्टर साहब के यहाँ ट्यूशन पढ़ने जाता था उनका टाइम 7 बजे शाम का था। जाड़े में लौटते समय वह वक्त रात में उतर जाता था। उनके घर जाने के लिए दो रास्ते थे उनमें से एक नक्खास की वर्जित गली में से होकर जाता था। लौटते समय मैं कभी-कभार इसी गली से धड़कते-धड़कते गुजरता था। उस समय की फूलती-पिचकती साँसें मुझे बहुत दिन तक याद रहीं। एक दिन मैंने दुस्साहस किया। एक रंगी-पुती निरायु औरत के पास जाकर मैंने झिझक और अदब से साथ पूछा "यहाँ का क्या दस्तूर है।"

मुझे याद है कि घबराहट के कारण मेरे अपने ही शब्द कमरे में फँसे कबूतर की तरह फड़फड़ाते हुए बाहर निकले पर इससे पूरी तरह अप्रभावित उस औरत ने एक बाजारू मुस्कान तक का दान नहीं दिया और ठोंककर कहा "रेट, दो रुपया है, चलो।"

मेरा दुस्साहस तिरोहित हो गया और मैं साइकिल पर चढ़कर भागा। यह किस्सा सुनाकर मैंने मित्र की ओर आशाजनक आँखों से देखा। मित्र ने मेरी कहानी को बिना किसी टिप्पणी के स्वीकार किया और फिर गतांक से आगे की तरह उसने अपना एक किस्सा सुनाया जिसके अनुसार एक सद्यप्रसवा वैश्या से केलि के दौरान उसके मुँह में दूध आ गया था। यह सुनकर क्षोभवश मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैं खिसियाया-सा उसके पास से उठ आया।

https://www.hindiadda.com/uttam-purush-ki-nivrtti/

मैं कुछ दिन अनमना-सा रहा। किंतु एक सच्चे हितचिंतक-शुभचिंतक की तरह उसने मुझे जल्दी ही जोड़ लिया। एक दिन उसने मुस्कुराते हुए कहा "बॉस एक फर्जी दौरा लगाओ। एक रात गायब रहना है।"

उसकी मुस्कान ऐसी थी कि उसे अर्थमय होने के लिए कोई आँख दबाने जैसी हरकत नहीं करनी पड़ती थी। बात मेरे दिलोदिमाग में तैर रही थी पर उसके इस तरह से शरीरधारी हो जाने से मैं कुछ हमले जैसी स्थिति में आ गया। फिर भी जान छोड़कर मैंने कहा "फर्जी दौरे पर तो गायब होना मुश्किल है।"

"फिर?" वह कुछ झुंझलाया।

"किसी दावत के बहाने रात दस-ग्यारह बजे तक गोल रह सकता हूँ। काफी होगा?"

"पता नहीं तुम जानो। ओ.के. देन, कल आठ बजे मेरे यहाँ आ जाना। परिवार आउट आफ स्टेशन है। कोई है नहीं। मैदान साफ है। वहीं इंतजाम किया है।"

"ठीक।"

एक पुरुषप्रधान दावत का बहाना कर मैं उसके यहाँ पहुँचा। उसका अपना एक मिनी एम.आई.जी. मकान था। आगे एक लॉन जैसी कच्ची जमीन की पट्टी थी, फिर एक छोटा सा कमरा जिसे वह ड्राइंगरूम कहता क्योंकि उसमें सोफासेट था, खंडित मूर्तियाँ थीं और पर्दे थे। मैंने आशंकित भाव से घंटी बजाई। उसने दरवाजा खोला और आराम से मुझे ड्राइंगरूम में बैठा दिया। मैंने उससे आग्रह किया कि वह दरवाजा बंद कर दे। उसने कहा, "अभी दरवाजा बंद करने की बेला नहीं आई।"

"क्यों, क्या बात नहीं बनी।"

"बनेगी-बनेगी सब्र करो।"

मुझे लगा कि वह बड़प्पन का खेल, खेल रहा है, मैं चुप लगा गया। उसने पूछा "बाजार से तुम्हारा खाना भी ले आऊँ। आखिरकार, दावत में आए हो।"

"हूँ।"

"ठीक है" कहता हुआ वह आत्मविश्वासी सक्षम व्यक्ति उठा और अंदर से कपड़ों से लैस होकर मेरे सामने आया। उसने जो कुछ मुझे बताया उसके अनुसार लड़की एक पूर्वनिश्चित स्थान पर नौ बजे मिलेगी और उसे वहीं से लाना होगा। निशंक होकर रहना चूँकि मेरी प्रकृति में नहीं है इसलिए मैंने पूछा कि यदि मान लो कोई भूले-भटके यहाँ आ जाए और घंटी बजाए तो मैं क्या कहूँगा। उसने कहा "कोई नहीं आएगा।"

मैं अकेले घर में लाखों में किसी एक दुस्सह अवसर की तरह आने वाले आगंतुक से डरता रहा और उत्तेजित होता रहा। मेरा अंदाजा है कि 9.30 बजे होंगे जब मैंने स्कूटर की घरघराहट, उसका खड़ा किया जाना, पदचाप और फिर घंटी की आवाज सुनी। मैंने बत्ती बुझाई, दरवाजा खोला और सोफे के एक किनारे पर बैठ गया। उसने आते ही सवाल किया "बत्ती क्यों बुझा दी?"

मेरे गले से भर्राई हुई आवाज निकली "ठीक रहता।"

तब तक उसने दरवाजा बंद कर बत्ती जला दी। लड़की की उपस्थिति ने एकदम से मुझ पर आघात किया जिसके कारण मेरा चेहरा बिल्कुल स्थिर हो गया। वह लड़की साड़ी ब्लाउज पहने हुए थी। उसका बनाव सिंगार एकदम सादा था और इस लिहाज से वह मेरी उस किशोर गली की रंडियों से अलग दिख रही थी। उसके चेहरे पर अविद्या और देसीपन की अनुत्तेजक छाप थी। वह मुस्कुराई, गोकि बाद में मैंने बहुत विश्वास के साथ याद किया कि उस समय उसकी आँखों के कोर बहुत भावहीन थे। मित्र ने मेरा परिचय दिया "यह मेरे दोस्त हैं।"

वह फिर मुस्कुराई। मैंने बड़ी शालीनता से कहा "तशरीफ रखिए।" पश्चात-बुद्धि का बड़ा गहरा शगल है मुझे इसलिए लगता है कि कहना चाहिए "बैठो"।

बहरकैफ वह बैठी और मित्र ने उसके कंधे पकड़कर अपनी ओर खींचा। मुस्कराते हुए उसने मित्र को ठीक सूखी आवाज में बरजा "ठीक से बैठिए।" इस पर वह मुझे उठाकर बेडरूम में ले गया। इस बेडरूम में एक डबल बेड, एक आलमारी, ड्रेसिंग टेबल और सिलाई मशीन अँडसी हुई-सी रखी थी। दीवाल में बनी आलमारी के एक खाने में अवतारों की तस्वीरें गणेश-लक्ष्मी की मूर्तियाँ और अगरबत्ती, धूप तरतीब से विराज

रही थीं। इस कमरे में हम दोनों के बीच 'पहले कौन' की बेतकल्लुफी पैदा हुई जिसमें समय की कमी का हवाला देते हुए 'पहले मैं' का एजाज मैंने हासिल किया और शील-मर्यादा की रक्षा हेतु बत्ती बुझाकर कमरे में इत्मीनानबख्श अँधेरा फैला दिया।

मैं बिस्तर पर उठंग कर बैठ गया। बैठने का अंदाज बड़ा ऐश्वर्यपूर्ण और मर्दाना था लेकिन नववधुओं को शोभा दे ऐसी मेरी घबराहट और उत्कंठा थी।

कमरे में दाखिल होकर वह मेरे बगल में बैठ गई। मैंने सोचा भले आदमियों की तरह कुछ बात करनी चाहिए "पूछा क्या नाम है आपका?"

"नाम जानकर क्या कीजिएगा?"

"ऐसे ही नाम तो कुछ होना ही चाहिए।"

"आपका क्या नाम है?" उसने प्रतिप्रश्न किया।

मैं अपना नाम बताने को तैयार नहीं था, "नाम जानकर क्या कीजिएगा।"

उसने कोई जवाब नहीं दिया और सामने दीवाल की ओर देखने लगी। उसके अनुत्तर से बगल में बैठा हुआ मैं बेमतलब हो रहा था। मैंने ख्याल किया उसके और मेरे बीच खासी दूरी है। हाथ बढ़ाकर मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और उसकी हथेली के उल्टे सिरे पर शालीनतापूर्वक अपने होंठ रख दिए। फिर निहायत नरमी से उसके हाथ सहलाते हुए सोचने लगा कि वह किस कदर मेरी शराफत और सलीके से प्रभावित हो रही थी। हाथ सहलाते-सहलाते मैंने ख्याल किया कि मेरा खुद का शरीर इस समय निहायत शरीफाना ढंग से दुम दबाए पड़ा था। एकदम मैंने उसे अपनी ओर खींचा। उसने कहा 'रुकिए' और बिस्तर से उठकर अपने कपड़े उतारने लगी। मैंने उठकर कमरे में रखा टी.वी. चला दिया। श्वेत-श्याम टी.वी. की धुँधली अनाक्रामक रोशनी में मैं उसे कनखियों से देखने लगा। वह भी बहुत सलीके वाली थी। उसने साड़ी, पेटीकोट एवं महत्वपूर्ण वस्त्र तह लगाकर रखे। दुबारा जब वह बिस्तर पर आकर बैठी तो स्पष्ट हो गया कि 'लेट सेट गो' का पटाखा दग चुका था और भद्रोचित तैयारियों के लिए कोई वक्त नहीं बचा है। लिहाजा मैंने उसे यहाँ-वहाँ दबाना शुरू किया। कुछ ही

क्षणों में अतींद्रियता का पहला अकथ अनुभव मुझे हुआ और मेरे होश फाख्ता हो गए। मैंने घबराकर अपने कपड़े उतारे और इधर-उधर फेंके। मैं उससे लिपट गया। मैं आश्चर्य विजड़ित हो रहा था, अरे! यह नामुराद नरमी कहाँ से और कैसे। मुझमें लज्जा और भय का एक साथ संचरण हुआ। धकधकाते हुए कलेजे के साथ मैंने उसके गाल का एक गूढ़ क्रूर चुंबन लिया। नतीजतन मुँह में कुछ पाउडर और क्रीम भर गया जिसे मैंने वितृष्ण हो थूक दिया। मैं घबराहट के ठंडे नावजूद पसीने से भीग रहा था। करवट बदल कर मैं चित्त होकर लेट गया। छत से चिपकी एक छिपकली मुझे घूर रही थी। उस घूरने से बेपरवाह होकर मैंने दिमाग चलाना शुरू किया। सबको पता है कि स्वाभाविक क्रियाओं तथा नींद आदि के बारे में सोचो तो नींद पकड़ में नहीं आती है। इसी तरह अगर मैं इस दुर्दशा के बारे में न सोचूँ तो शायद काम बन जाए।

मैंने उठकर टी.वी. बंद किया। कमरा खामोश हो गया। मैंने बच्चों की तरह अपना सर उसकी नंगी छातियों पर रख दिया। वह बिल्कुल चेष्टाविहीन दयाहीन होकर पड़ी थी। उसने मेरे सर तक को नहीं सहलाया।

मैं ऐसी असह्य-असहाय स्थितियों की दो चार विदेशी कहानियाँ पढ़ चुका था। एक में पुरुष स्त्री को पीटना शुरू करता है, तब स्फुरित होता है और दूसरी में वह हत्या तक कर देता है। यह हत्या और मारपीट जीवन की कलात्मक अधोगति का कितना उत्कृष्ट नमूना है। पर मेरी इतनी मजाल कहाँ, मुझे अफसोस हुआ कि मैंने पहले से ही ढेर-सी शराब क्यूँ न पी ली। क्योंकि अपनी अकेली ताकत पर मैं इस स्थिति का मुकाबला नहीं कर सकता था। हे भगवान! रक्षा करो। सच मानिए उस समय पौराणिक गज की तरह मैंने त्राहिमाम्-त्राहिमाम् किया था और शायद मैं दुनिया का पहला आदमी रहा होऊँ जिसने इस काम के लिए प्रभु का स्मरण किया हो। मेरा मन हाहाकार कर रहा था और उसी अनुपात में यह बदबख्त बेशऊर देह अकारथ होती जा रही थी।

अंततः 'कपड़े पहन लूँ' उसने कहा।

यह उस रात्रि का अंत नहीं था। मैं लुटा-पिटा सा घर आया और बीवी के बगलगीर हुआ। मैं अपने क्षत-विक्षत तन-मन से उबरना चाहता था। मुझे याद है कि लगभग

आदत सी बन गई जानी-पहचानी चेष्टाओं में उस दिन कुछ आशंका भी थी। परंतु चीजों ने अपना स्वाभाविक आकार ग्रहण किया और मुझे लगा कि मैं किसी दुस्वप्न से जागकर आश्वस्त हो गया हूँ।

वह दोस्त जल्दी ही मेरी जिंदगी से बाहर हो गया। उसके आमंत्रण और उलाहनों को मैंने बहुत मुस्कुरा-मुस्कुराकर किनारे लगाया। मुझे लगता था कि मेरा जीवन पूर्णतया नैतिक और निःसत्व हो रहा है और इसका कोई अजटिल निष्पाप विकल्प भी नहीं है।

इस सबके बाद मुझे उसी तरह संतुष्ट हो जाना चाहिए जिस तरह भक्तजन संतोषधन से सुखी रहते हैं। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। सोच-विचारकर मैंने अपनी पत्नी से चिढ़ना आरंभ कर दिया। उस पुकारपातर के साथ उन विस्मरणीय क्षणों का यही तो कारण हो सकता है कि पत्नी ने मुझे एक ऐसा घरेलू कुत्ता बना दिया जो दूसरे के हाथ से रोटी खा ही नहीं सकता। शुरू से ही मैं उस पर बहुत आरामदेह ढंग से निर्भर था और इस निर्भरता को ही दांपत्य प्रेम का पर्याय समझता था। मैं उसके प्रति अमानवीय सीमा तक उदार भी था। वह बाँझ थी परंतु मैंने उसे कभी भी ताना नहीं दिया। ऐसा नहीं कि वह मेरी इस कृपा के बोझ को जड़वत ढोती थी। इसके बरक्स वह शायद इसी कारणवश मुझे एक श्रेष्ठ मनुष्य समझती थी और तुर्रा यह कि जब कभी वह अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती थी तो एक उत्तम देवोपम पुरुष की भाँति मैं उसे बरज देता था। धीरे-धीरे वह अपने बाँझपन के साथ सहज हो गई कि मेरी श्रेष्ठता लगभग समाप्त हो गई। मुझे उसने आत्मसात कर लिया, यहाँ तक कि मुझे होने वाले जुकाम के बारे में भी वह सटीक भविष्यवाणी करने लगी। मैं इस समय क्षुब्ध था और जीवन के इस परम सांमजस्य की सही-सही तौल करना चाहता था। पक्ष के उत्तर में विपक्ष के अपने आने-पहचाने उपकरणों का उपयोग करते हुए मैंने एक प्रतिपुरुष का अध्यारोपण किया।

आह! क्या आदमी पैदा हुआ बिल्कुल बेचेहरा जैसे भूत-पिशाच और देवता और उन्हीं की तरह अदृष्य तथा अति वास्तविक। इस आदमी के साथ मेरी कभी नहीं पटी। मैं इससे हमेशा फाइलें बचा कर रखता था। क्या पता काम, क्रोध, लोभ, मोह से पीड़ित होकर वह कब कैसा कागज चला दे। मैं उसे एक हाथ दूरी पर रखकर ही निष्कलुष

नौकरी करता रहा। लेकिन वह सर्वव्यापी मेरे घर में घुस गया, मेरे पवित्र घर में। उसकी उपस्थिति विष की तरह मेरे हृदय में टपकी और रगों में घुल गई। मैं भर्तृहरि की तरह स्तंभित रह गया लेकिन मैंने संन्यास नहीं लिया। भला क्यूँ लूँ जबकि वह हर तरीके से मुझसे कमतर था और इसी वजह से मेरी पत्नी की हरमजदगी को लगभग कल्पनीय बनाता था। अजी, मैं उसकी सारी चालबाजियों को जानता था लेकिन डरता था कि वह रँगे हाथ न पकड़ा जाए। मैं अब कभी-कभी दफ्तर से बेवक्त उठकर घर आ जाता था और धमधमाते हुए कदमों से एक ऐसी जगह बैठ जाता था जहाँ से वह दिखाई न दे, अगर वह चुपके से भाग रहा हो तो।

मैं अब पत्नी की आलमारी को बहुत डरते-डरते खोलता था कि कहीं कोई पुरजा, कोई चिट्ठी, कोई सबूत न मिल जाए जो मेरी आँख में शहतीर की तरह जा अटके। उन कागजों को मैं छूता तक नहीं था जो प्रथमदृष्टया संदिग्ध नजर आते थे। लेकिन इसके बावजूद मैंने अपनी कल्पना में कोई सृजनात्मक खोट नहीं आने दी। किसी दिन मैंने अवैध बिस्तर में बीवी को एक उछलता आनंद-उद्वेलित चीत्कार करते सुना जिससे कि मुट्ठियाँ वाकई में भिंच गईं। वह क्षण मेरी सृजनात्मक क्षमता का शिखर क्षण था जहाँ से पूरे परिदृष्य पर एक विहंगम दृष्टि डाली जा सकती थी।

मुझे मसीहाई अहसास हुआ कि वह नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है। वह समझता ही नहीं था कि वह कितना महत्वपूर्ण है। जनता की सेवा में लगे लाखों-लाख शासकीयकर्मी और इन कर्मियों से जूझती सरकार। उनकी नियुक्ति, उनका स्थानांतरण, उनकी प्रोन्नति, उनकी अवनति, उनके वेतनमान और उनके प्रत्यावेदन। जब मैं इनके बीच संग्राम कर रहा होता तो वह मौज करने के लिए कहीं उड़ जाता था। परदारा और कांचन उसका स्पर्श पाकर जीवित हो उठते थे और वह उनका। यह एक विनाशकारी संक्रामक संभावनाओं वाली स्थिति थी। इसलिए मैंने उसकी ओर सहानुभूति से देखना आरंभ किया और जैसे महापुरुष डाकुओं की ओर देखते हैं। जैसे-जैसे मैं उसे जानता गया वह मेरा वशवर्ती होता गया। एक समय बाद उससे मुझे कोई खटका नहीं रहा। मैं एक कलात्मक धोखेबाजी में कामयाब हो गया जिसके कारण वह मेरे साथ ही रहने लगा। वह एक बड़ी सी छाया है जिसके तले

जीवन की संदिग्ध संतुष्टि की मैंने पुनर्प्राप्ति की। आश्चर्यों का आश्चर्य कि उसने मेरी जीवन को उद्देश्यपरक भी बनाया।

एक दिन उसी से पूछा "तुमने कैथे की चटनी खाई है?"

"अरे बहुत दिन हो गए।"

"तुमने कमरख कब से नहीं खाया?"

"जमाना बीत गया।"

"तुम शहतूत खाते हो?"

"चखा तक नहीं। आम-अमरूद में जिंदगी बीत गई।"

मैंने यह प्रश्न अपनी बीवी से किए जिसकी अग्निपरीक्षा लेकर मैं इतना संतुष्ट था कि उसमें से प्रेम की उत्कट गंध आने लगी थी। वह अपनी लापरवाही पर लज्जित हुई। मैंने यही प्रश्न पास-पड़ोस के बच्चों से किए जिनकी अज्ञता देखकर मैंने लज्जित होने का निश्चय किया। मैंने तय किया कि भारतीय पर्यावरण के भूले-बिसरे चिन्हों यथा कैथा, कमरख, शहतूत, बड़हल आदि के बारे में लोगों का ध्यान आकृष्ट करूँगा।

मैंने अपने छोटे-से लान में उसी समय शरीफे का जो पेड़ लगाया था वह बड़ा होकर अब फलवान हो गया है। आज जब मैं आखिरी दिन दफ्तर जा रहा हूँ तो यह सोचना चाहता हूँ कि यह शरीफा भी मुझे सिद्ध कर रहा है।

मैं समय से अपने विदाई समारोह में पहुँच गया। गुलाब की मालाएँ, एक दीवालघड़ी और जलपान का सामान आ गया था। लोग बहुत चुस्ती से जगह भर रहे थे। एक निश्चित सुस्थिरता के बाद उन्होंने बोलना आरंभ किया। वे निष्ठापूर्वक बोल रहे थे जबकि मैं उनके अगले वाक्य का पूर्वानुमान लगा रहा था। शब्दों का यह खेल मुझे इतना रुचिकर लगने लगा कि मैं उन लोगों के प्रति बेपरवाह हो गया जो मेरे बिछुड़ने से दुखी हो रहे थे।

आखिरकार मेरी बारी आई और मैं उठा।

https://www.hindiadda.com/uttam-purush-ki-nivrtti/

"आदरणीय सचिव महोदय" के बाद मैं एक प्रभावक क्षण के लिए रुका और अटक गया। अद्भुत अटक थी वह, एक गल्प की तरह आकर्षक अविश्वसनीय और अनुत्तरदायी। मैं अचानक उन लोगों के नाम भूल गया जिनके साथ आज तक कार्यरत था। मेरे पास दिमाग भाँजने के लिए बिल्कुल अवकाश न था क्योंकि श्रोतागण तैयार बैठे थे। भर्राई हुई आवाज में मैं कहने लगा "प्रिय अनुसचिव जी, अनुभाग अधिकारी जी, यू.डी.ए.जी., एल.डी.ए.जी. और प्यारे चतुर्थ श्रेणी के भाइयों"! साथ ही खुद को याद दिलाने की कोशिश कर रहा था कि मैं किसी जंगल में नहीं खो गया हूँ, जहाँ पेड़ों के नाम नहीं होते वरन् जीवधारियों-नामधारियों के बीच खड़ा हूँ। मैंने यह नाकाम और अनुचित उम्मीद भी कि लोग अपनी गरदनें हिलाकर अभी अपना नाम मुझे बताएँगे। हारकर मैं वह सब बोलने लगा जो नितांत रस्मी था, उस सहयोग और स्नेह के बारे में जो उन्होंने मुझे दिया था। बोलते-बोलते मैं अपने पाखंड की तेजस्विता से इतना मुग्ध हो गया कि पूरे दिलोजान से बोलने लगा। मेरे अंदर संदेह का लेश न रहा और बिना किसी पड़ताल के मैंने यह भी तय कर लिया यह सारे नाम उसी ने चुराए हैं, मेरे द्वारा सृजित उस अशरीरी प्रतिपुरुष ने। मेरा चेहरा तमतमा गया। अरे जो वंचक! मेरी वाणी का आवेश अब ऋषिदुर्लभ था। मैं लगभग मंत्रोच्चार कर रहा था जिसके मारक प्रभाव से वह छटपटाकर भाग रहा था। मैं निरंतर निवृत्त हो रहा था, किसी प्रेतबाधा से मुक्त हो रहे व्यक्ति की तरह।

विदा ओ प्रतियोगी !